इस्लामी करुण गीत 'जाड़ी गान'

अजीता मेनन

सभी पारम्परिक धर्मों ने महिलाओं पर अनेक पाबंदियां लगाई हैं। पर पश्चिमी बंगाल के मुर्शीदाबाद ज़िले की ग्रामीण महिलाओं ने इन वर्जनाओं से खुद को आज़ाद करके प्रचलित धार्मिक परम्परा को अपने जीवकोपार्जन तथा सामाजिक जागृति का सहारा बना लिया है। इस प्रक्रिया में उन्होंने एक पारम्परिक शैली *जाड़ी गान* को भी जीवनदान दिया है। इस कला शैली में इस्लामी करुणगीतों के माध्यम से धार्मिक त्रासदियों और शहीदी गाथाओं का वर्णन किया जाता है।

रसीना बीबी, उम्र 48 वर्ष ने अपने गांव, जीबॉन्ती में अट्ठारह साल पहले ये करुणगीत गाने शुरू किये थे। एक पारम्परिक मर्दाने परिवेश में उनका ये कदम और गांव-गांव गाते हुए पैसे इकट्ठे करने की कोशिश में उन्हें काफी विरोध झेलना पड़ा। पर रसीना बीबी बताती हैं, "मेरे पास कोई हुनर, शिक्षा या रोज़गार नहीं था। पर मैं गा सकती थी और ये गाथाएं मुझे जुबानी याद थीं। बचपन से मजलिसों में मैं इन्हें सुनती आई हूं। सोचा इसे अपना पेशा बनाने की इजाज़त सिर्फ़ मर्दों को ही क्यों हो? मैंने पहले-पहले अकेले गाना शुरू किया। दूसरी औरतें डरती थीं क्योंकि पुरुष गाने वाले मेरा खूब विरोध करते थे। पर मैंने हार नहीं मानी। इतिहास मेरे साथ था। हज़रत मुहम्मद की बेटी फतिमा अज़-ज़ाहरा ने *जाड़ी गान* परम्परा की नींव डाली थी। इसके ज़रिए वे हिम्मत व वीरता के किस्से सुनाती थीं। इमाम हुसैन की शहादत के पश्चात उसकी बहन ज़ैनब ने यह परम्परा कायम रखी। उसने इन गीतों के ज़रिए फरेब, आतंक, कत्ल और धोखे के किस्से बयान किए। चूंकि ये शैली औरतों ने रची थी इसलिए हमें इनको गाने में कोई धार्मिक रोक-टोक या इस्लामी कानून का सामना नहीं करना पड़ा।"

हालांकि बंगाल में *जाड़ी गान* बहुत प्रचलित है व घरों में मजलिसों का आयोजन अक्सर किया जाता है परन्तु मातम या इमाम हुसैन के लिए शोक जताने का रिवाज यहां नहीं है क्योंकि गाने वाले सुन्नी मुसलमान हैं। औरतों की मजलिसों में ज़रूर माहौल गमगीन होता है और गीतों में साज़ का इस्तेमाल नहीं किया जाता।

वर्षों की जद्दोजेहद के बाद रसीना बी एक दस महिलाओं की टोली बनाने में कामयाब हुई हैं। उनसे प्रेरित होकर आसपास कई महिला टोलियां बनी हैं जिसमें शिक्षित मध्यम वर्ग की महिलाएं भी शामिल हैं। लालबाग, कांडी, हातपाडा, जियागंज क्षेत्रों से महिला टोलियां राज्य के बाहर जाकर भी *जाड़ी गान* पेश करती हैं व पैसे कमाती हैं।

ताज्जुब की बात यह है कि सरकार में भी इन महिलाओं को मान्यता मिल गई है। इन गीत टोलियों के ज़रिए सरकार मुसलमान समुदायों में मातृत्व व शिशु स्वास्थ्य, पोलियो अभियान, प्राथमिक शिक्षा, एड्स चेतना फैलाने में कामयाब रही है। जीबॉन्ती ग्राम के *जाड़ी गान* समूह की गायिका ऐशवारा बेगम बताती हैं — "गांववाले हमारा गीत सुनने आते हैं इसलिए जब हम शिक्षा या स्वास्थ्य की बात करते हैं तो उनका अविश्वास मज़बूत इरादे में तब्दील हो जाता है।"

हालांकि इस पुरुष गायन शैली में कदम रखने के पीछे औरतों का मकसद पैसा कमाना था परन्तु इस धंधे में नियमित कमाई नहीं है। "जो पैसे हम कमाते हैं या जो सरकारी अभियान से जुड़ने पर हमें मिलते हैं उनसे परिवार चलाना संभव नहीं है। पर पति व अन्य घरवालों की कमाई से जुड़कर यह रकम उपयुक्त हो जाती है। अब हमारे बच्चों को कपड़े और शिक्षा मिल पाती है। बुर्का छोड़कर घर से बाहर निकलना फायदेमंद साबित हुआ है। पर अभी भी हम मजलिस के दौरान अपना सर ढककर रहते हैं। ये हमारा सम्मान देने का तरीका है।"

जब महिलाएं राज्य द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों या महफिलों में *जाड़ी गान* प्रस्तुत करती हैं तब दर्शकों में सभी धर्मों के लोग शामिल होते हैं। पर कार्यक्रम का स्वरूप एक धार्मिक गोष्ठी का ही होता है जैसा कि *जाड़ी गान* की रवायत है।

जहां इस पारम्परिक शैली ने गरीब महिलाओं के स्वाभिमान की रक्षा की है वहीं शिक्षित मुसलमान लड़कियां, जो इस शैली से जुड़ रही हैं, ने सामाजिक कल्याण में भी सहयोग किया है। "हमें पैसे नहीं चाहिए पर हम मानते हैं कि *जाड़ी गान* हमारी विरासत का हिस्सा है और इसलिए इसे बरकरार रखना महत्वपूर्ण है। इसके ज़रिए हम लोगों को एक बड़ी मज़लिस में आने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं, जहां वे कुछ दूसरे मुद्दों पर भी बातचीत कर सकें।" लालबाग समूह की सईदा सबा अथुर जो 27 वर्ष की हैं का मानना है। एक अन्य गायिका सईदा जुल्मीमुन निसा बताती है, "हमारी टोली गाने का पैसा नहीं लेती। हम दस-बारह गायिकाएं हैं और सभी शिक्षित उच्च वर्ग परिवार से आती हैं। हम ये गीत इसलिए गाते हैं क्योंकि इससे आत्मा पवित्र होती है। इनका प्रभाव दिलो-दिमाग पर होता है। हम इन गीतों में सामाजिक कल्याण की भी बात करते हैं।"

इन करुण गीतों से जुड़ने वाली महिलाएं अपने घरों में रियाज़ करती हैं। अधिकांश गीत बंगला में गाये जाते हैं। पर अरबी, उर्दू और फारसी में भी कुछ शोक गीत है जो मानवता के लिए हुसैन के बलिदान की गाथा सुनाते हैं। दुख *जाड़ी गान* की रूह है। ये गीत श्रोताओं के दिल तक पहुंचकर आंसू के रूप में बहते हैं। इससे सुकून और हौसला मिलता है।

जाड़ी गान ने न सिर्फ़ औरतों को सशक्त और आत्मनिर्भर बनाया है बल्कि धर्म और सामाजिक कल्याण के बीच फासला कम किया है। आज बुजुर्ग मौलाना और आम लोगों को इस पर आस्था है। जीबॉन्ती गांव के एक बुजुर्ग मौलाना कहते हैं, "औरतों की इस पहल ने जवानों के दिल में इस्लाम को समझने की ख्वाहिश जगाई है। यह एक अच्छी शुरूआत है जिसका श्रेय औरतों को दिया जाना चाहिए।"